International Journal ofAdvanced Educational Research
ISSN: 2455-6157; Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 2; Issue 3; May 2017; Page No. 146-147

दलित आत्मकथाओं के सरोकारों का समाजशास्त्रीय मूल्यांकन

डॉ० नरेश कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी), एनीबिसेण्ट गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, सलारपुर, कोटकासिम, तिजारा, अलवर, राजस्थान, भारत।

प्रस्तावना

समस्या की पहचान

आत्मकथा विधा नई नहीं है, यह ऐसी जनतांत्रिक विधा है, जिसमें कई विधाएँ एक साथ समाहित होती हैं। आत्मकथा न केवल अपने जीवन में पुनः गुजरने की प्रक्रिया है बल्कि दूसरे ऐसे अनुभवों के संसार से गुजरना भी है जहाँ हम वैयक्तिकता छोड़कर सामूहिकता में प्रवेश करते हैं। समाजशास्त्रीय मूल्यांकनकर्ताओं ने आत्मकथा विधा को विशेष महत्त्व दिया है। समाजशास्त्रीय आलोचक जार्ज मिश, जार्ज गाँशतोफ, विलियम स्पेन्शरमैन ने इस विधा पर गंभीरता से काम किया है। हम जानते हैं कि विभिन्न जातियों, भाषायी, क्षेत्रिय वर्ग और संस्कृतियों का उभार, दलित विमर्श और स्त्रीविमर्श से जुड़े प्रश्नों का महत्व उत्तर–आधुनिकता के कारण प्राथमिकता में आये हैं। इनका मानना है कि प्रत्येक कण का स्वायत और भिन्न महत्व है। समाज में हाशिये पर पड़े लोगों को महत्व दिये जाने की शुरूआत तो हो ही चुकी थी लेकिन एक वैचारिकी के रूप में 'दलित' की शुरूआत तब से मानी जाती है जब से समाज में ऊँच–नीच, अमीरी–गरीबी, छूत–अछूत आधारित शोषण विद्यमान था। भारतीय सामाजिक संरचना का जन्म जिस ऋग्वेद के सूत्र से माना जाता है वह स्वयं कितना असंतुलित और समाजशास्त्रीय प्रहसन है। इसमें कहा गया है –

> **''ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद बाहू राजन्यः कृत।**
> **उरू तदष्य यद्वैश्य पद्भ्यांः शूद्रोऽजायत।।''**
>
> पुरूष सूक्त – (10 / 90 / 12)

अर्थात् ब्राह्मण परम् पुरूष (ब्रह्मा) के मुख से, क्षत्रिय उसकी भूजाओं से, वैश्य जांघों से और शूद्र पैरों से उत्पन्न हुए हैं।

वर्ण–व्यवस्था की उत्पत्ति के विषय में भी विभिन्न समाजशास्त्रीयों एवं विद्वानों ने अपने मत और सिद्धान्त दिये हैं। उनके अनुसार परम पुरूष (ब्रह्मा) के मुख, बाहू, जांघों और पैरों से ही चारों वर्ण की उत्पत्ति हुई है। शारीरिक अंगों की उच्चता के ही क्रमानुसार वर्णगत उच्चतम और निम्नतम को प्रदर्शित करता है। चूँकि ब्राह्मणों की उत्पत्ति मुख से है अतः वह ज्ञानोचार से सम्बन्धित है। बाहों से उत्पन्न होने नाते क्षत्रिय का काम बाहू बल द्वारा मानव जन की रक्षा करना। वैश्य की उत्पत्ति जाघों से है अतः उसका काम चल–फिर कर व्यापार और कारोबार करना माना गया। और चूँकि शूद्रों की उत्पत्ति पैरों से मानी गई है, इसीलिए उन्हें मनोयोग एवं निर्विकार भाव से सेवारत रहने को कहा गया है। साथ ही धर्मशास्त्रों एवं सामाजिक वर्जनाओं ने दलितों के उत्थान और विकास के लिए किसी भी प्रयास को प्रतिबंधित करने में कोई गुंजाईश नहीं छोड़ी और उन्हें पीढ़ी–दर–पीढ़ी सेवाकार के रूप में रखा।

हाँलाकि पारिभाषिक रूप में 'दलित' शब्द का अर्थ उन सभी लोगों से है जो दलन, शोषण और बर्बरता के शिकार हैं तथा समाज की मुख्यधारा से कटे होते हैं। चूंकि भारतीय समाज का मूलाधार वर्ण–व्यवस्था है अतः वर्ण विशेष में जन्म लेते ही दलित दलित हो जाता है। आज के संदर्भ में इसीलिए यह शब्द वैयक्तिक नहीं अपितु सामाजिक और जातिगत शब्द बन जाता है। अर्थात् इसके अन्तर्गत वे सभी जातियाँ आती है जो वर्ण–व्यवस्था में निचले पायदान पर थी, जैसा मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं –''लेकिन मैं 'दलित' शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ तो मेरे ध्यान में वे हैं जिन्हें भारतीय वर्ण–व्यवस्था में शूद्र कहा जाता है या जिन्हें समाज में अछूत माना जाता है।'' – 1

उद्देश्य

जैसा कि हम जानते हैं कि सदियों से हमारा समाज परंपराओं और धर्मशास्त्रों पर आधारित है। हमारे यहाँ उच्च वर्गीय मानसिकता की संबलता से सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक विधानों से नियंत्रित होकर निचली कौम के लिए अमानवीय और शोषण व्यवस्था का कुचक्र हमेशा से रचा है, लेकिन जब किसी भी शोषण की अति हो जाती है तो क्रांति के सूत्र चुपचाप पनपने लगते हैं। समाज में ऐसे सुधारक हुए जिन्होंने समग्र समाज–व्यवस्था एवं पुरोहितवाद के पाखण्डी संस्कारों के खिलाफ खुलकर बगावत प्रारंभ की ऐसे ही समाज सुधारक कबीर ने वर्ण–व्यवस्था पर प्रश्न चिह्न खड़ा किया।

यथा – **जे तू ब्राह्मन, ब्राह्मणी जाया और बाट हवै क्यों न आया'**
और – ''हमारे कैसे लोहू, तुम्हारे कैसे दूध,
तुम कैसे, ब्राह्मण, पाण्डे हम कैसे शूद्र'' –2

भारतीय वर्ण–व्यवस्था पर उठा यह सवाल जस का तस है। इस सवाल का तार्किक जवाब ना तो कल था और ना ही आज है। कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण है। समाज की पीड़ा, दुःख को अभिव्यक्ता करने वाला आधार स्तम्भ या साहित्य हमें प्रगतिशीलता और मानवतावादी होने का रास्ता दिखाता है, तब हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि समाज की लगभग आधी आबादी को समाज ने इस लायक ही नहीं छोड़ा कि उनकी वास्तविकता को सामने लाकर देखा जाए। उन्हें करूणा और सहानुभूति देने वाले तो कई मिले लेकिन उसमें शोषण और जुल्म का न विरोध नजर आया और न ही शोषित वर्ग का आक्रोश ही कहीं नजर आया। पहली बार दलित लेखकों ने अपनी आत्मकथाओं के माध्यम से इन दोनों कार्यो को कर दिखाया। दलित आत्मकथाओं ने सर्वप्रथम समाज के संवेदनशील लोगों में एक बैचेनी पैदा कर दी। पहली बार एक मिथक का भ्रम टूटा। इन आत्मकथाओं के माध्यम से सवर्णो के मन में व्याप्त दलितों के प्रति पूर्वाग्रहों व धारणाओं का तथा श्रेष्ठता के दंभ में क्षरण होती मानवीयता को केन्द्रित किया गया। अपने जीवन की घटनाओं में इन रचनाकारों ने समाज की निचली–ऊपरी परतों में व्याप्त सामाजिक हिंसा को उधाड़ा है।

भारतीय समाज का सबसे दर्दनाक और घिनौना पहलू है वर्ण–व्यवस्था जिसे धर्म और कानून का रूप देकर समाज में असमानता को वैधता देने वाली इस व्यवस्था को लागू किया गया। वर्ण–व्यवस्था और पितृसत्ता के ये दो ऐसे आधार स्तम्भ हैं जिस पर पूरी समाज–व्यवस्था और उसका पितृवादी रूप टिका है।

वर्ण–व्यवस्था में हिन्दू समाज ने मानवीयता को समाप्त करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। समाज में वर्ग विशेष का एवं उसके कुछ लोगों का वर्चस्व बनाए रखने के लिए तथा समाज में एक वर्ग की दूसरे वर्ग पर अन्याय उत्पीड़न व शोषण की निरंतर चलती यातना ने मनुष्य को मनुष्य की श्रेणी से नीचे गिरा दिया।

इसी जाति प्रथा और वर्चस्व लालसा ने भारतीय समाज का बहुत अनिष्ट किया, उसे हमेशा के लिए पिछड़ा रूढ़िग्रस्त और बर्बर समाज बना दिया गया। इसीलिए वर्चस्व की मानव विरोधी व्यवस्था और इस प्रकार की विचारधारा को उद्घाटित करने वाली ये आत्मकथाएँ व्यक्ति–विशेष की आत्मकथा नहीं रह जाती हैं बल्कि पूरे समाज से समाजशास्त्रीय चिन्तन से सरोकार रखने वाली दारूण–कथा बन जाती है। वर्ण–व्यवस्था और जाति भेद की व्यवस्था ने समाज के लोगों में स्थायी भेद बना दिया। जब एक वर्ण या जाति के लोग दूसरे वर्ण या जाति के लोगों को छू भी नहीं सकते तो विभिन्न वर्णो के लोग आपस में कैसे मिलकर रह सकते हैं ? देश की अखण्डता और एकता का क्या होगा ?

संदर्भ ग्रन्थ

1. केवल राख ही जानती है जलने का अनुभव – मैनेजर पाण्डेय अनभै साँचा, पूर्वोदय प्रकाशन, दरियागंज, नई–दिल्ली–2002 पृ. 274
2. समाज सुधारक महात्मा कबीर, हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. बहादुर सिंह, माधव प्रकाशन, यमुनानगर, हरियाणा– पृष्ठ 112
3. दलित साहित्य और सामाजिक न्याय पुरूषोत्तम समता प्रकाशन, दिल्ली, 1997
4. हिन्दी की दलित पत्रकारिता पर श्योराज 'बेचैन', समता प्रकाशन, पत्रकार अम्बेडकर का प्रभाव दिल्ली, 1997
5. आधुनिकता के आयने में दलित अरूण कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
6. अनभै साँचा मैनेजर पाण्डेय,पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली प्रकाशन वर्ष–2002
7. हिन्दू जाति का उत्थान और पतन रजनीकान्त शास्त्री, किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद 2008